टमाटर तथा अन्य सब्जियों का मूल–गाँठ या मूल–ग्रन्थि रोग

कृषि कुंभ (मार्च, 2023),
खण्ड 02 भाग 10, पृष्ठ संख्या 47–51

टमाटर तथा अन्य सब्जियों का मूल–गाँठ या मूल–ग्रन्थि रोग

हरीश कुमार, ज्योति, विजय कुमार एवं अमित सिंह
असिस्टेंट प्रोफेसर
स्कूल ऑफ एग्रीकल्चर साइंस, आई. आई. एम. टी. यूनिवर्सिटी मेरठ, उत्तर प्रदेश, भारत
Email Id: drplantpathology@gmail.com

टमाटर एवं अन्य सब्जियों का मूल–गाँठ रोग विश्व के सभी महाद्वीपों–एशिया, यूरोप, उत्तरी एवम् दक्षिणी अमेरिका तथा आस्ट्रेलिया में पाया जाता है। भारत में टमाटर एवं सब्जियों के मूल–गाँठ रोग का प्रकोप लगभग सभी उत्तरी, पूर्वी, मध्य एवं दक्षिणी राज्यों में पाया जाता है। टमाटर एवम् भिडी को अकेले मूल–गाँठ सूत्रकृमि द्वारा 82.5 प्रतिशत तक संक्रमित पाया गया है। सांवल ;1951द्ध ने लखनऊ (उ० प्र०) के एक फार्म पर इस रोग के कारण बैंगन में 59: पौधों की मृत्यु तथा 45: पौधों की वृद्धि को बहुत कमजोर पाया। दास गुप्ता (1962) ने दिल्ली में विभिन्न सब्जियों में मूल–गाँठ रोग के द्वारा 60: हानि का अनुमान लगाया है। इसी प्रकार श्रीवास्तव (1969) ने कानपुर (उ०प्र०) में बैंगन एवं टमाटर में 75: प्रतिशत हानि बताई है। बिन्द्रा एवं कौशल (1971) के अनुसार मूल–गाँठ रोग द्वारा विभिन्न सब्जियों में बिहार में 33: और दिल्ली में 60: तक हानि प्रतिवर्ष पहुंचाई जाती है। गौड (1973) ने इस रोग द्वारा टमाटर में 20: से 75: तथा बैंगन में 17: से 81: तक हानि बताई है। इसी प्रकार भाटी एवं जैन (1977) ने मूल–गाँठ सुत्रकृमि द्वारा भिंडी में 91:, टमाटर में 46: और बैगन में 27: उपज की हानि का अनुमान लगाया है। किशनप्पा एवं सहयोगियों (1981) ने इस रोग द्वारा बैंगन की फसल में लगभग 44.87: उपज में हानि बताई है। रेड्डी (1985) ने फसलों के हानि निर्धारण अध्ययनों में पाया है कि मूल–गाँठ सूत्रकृमि के कारण प्रतिवर्ष टमाटर में 39.77: तथा मटर में 19–20: तक उपज घट जाती है। वर्ष 1990–91 में देश के विभिन्न क्षेत्रों में किये गये सर्वेक्षण के अनुसार मूल–गाँठ रोग द्वारा टमाटर में भुवनेश्वर (उड़ीसा) में 30.6: सोलन (हि०प्र०) में 48.5:, कानपुर (उ० प्र०) में 45.5:, कोयम्बटूर (तमिलनाडु) में 42.5: तथा बैंगन में पूसा (दिल्ली) में 44.0: और करेला में सोलन (हि०प्र०) में 47.2: वार्षिक हानि का आकलन किया गया है।

लक्षण:

मूल–गाँठ सूत्रकृमि मुख्यतः जड़ों अथवा भूमिगत कंदों या फलियों के परीजीवी होते हैं, अतः इनके द्वारा उत्पन्न उपरिभूमिक लक्षण अन्य दूसरे मूल रोगों या पर्यावरण कारकों के समान ही जल एवं पोषक तत्वों की कमी के रूप में प्रकट होते हैं। रोगग्रस्त पौधों की वृद्धि का रूकना और उन पर छोटी–छोटी पीली हरी या पीताभ पत्तियों का निकलना तथा कमजोर एवं थोड़े फलों का लगना इत्यादि प्रमुख लक्षण हैं। अत्यधिक सूत्रकृमिग्रस्त मृदा में नयी पौद बहुत कम संख्या में भूमि से बाहर निकल पाती है अथवा इनको मृत्यु भी हो सकती है। परन्तु बढ़ते हुये पौधों की मृत्यु उस समय तक नहीं होती है, जब तक कि पौधों की जड़ों पर कुछ मृदोढ़ कवकों जैसेः फ्यूजेरियम, राइजोक्टोनिया, क्टसिलियम, फाइटॉफ्थोरा, इत्यादि की जातियाँ अथवा जीवाणु का आक्रमण नहीं हो जाता है। आमतौर से रोगग्रस्त पौधों पर न तो फूल ही आते हैं और न फल बनते हैं, परन्तु यदि रोग का प्रभाव कम होता है तो फूल और फल लग भी सकते हैं। कभी–कभी पौधों पर फल शीघ्र आ जाते हैं, परन्तु फलन बहुत अल्प मात्र में अपेक्षाकृत थोड़े समय के लिये होता है।

रोग का विशिष्ट एवं निदान सूचक भूमिगत लक्षण पौधों की जड़ों पर गाँठों या पिटिकाओं का बनना है। रोगग्रस्त जड़ों पर गाँठे संक्रमण स्थल के फूलने से बनती हैं, जिनका व्यास स्वस्थ जड़ों की अपेक्षा दो या तीन गुना अधिक होता है। एक ही जड़ के अनेक भागों पर संक्रमण होता है और गाँठों की वृद्धि के कारण जड़ें रूक्ष एवं मुद्गराकार हो जाती है। मूल–गाँठो का रासायनिक विश्लेषण विकिरण समस्थानिकों के प्रयोग द्वारा करने पर इनमें नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटाश,

इत्यादि को संचित पाया गया है, जिनको मृदा से ग्रहण कर लिया गया था, परन्तु पौधे के अन्य दूसरे भागों में स्थानांतरित नहीं किया गया था। पिटिकायुक्त ऊतक से पोषक तत्वों का बाहर क्षरण या रिसाव भी हो सकता है

प्रायः खेत में रोगी पौधे समूह में बिखरे हुये टुकड़ों में दिखायी पड़ते हैं, जिसका कारण मृदा में सूत्रकृमिय का असमान वितरण होता है। इन टुकड़ों का आकार प्रतिवर्ष बढ़ता रहता है तथा यह जुताई एवम् सिंचाई के जल की दिशा में अधिक फैलते हैं। रोग लक्षण फसल की वृद्धि के साथ–साथ बढ़ते हैं तथा शुष्कता या निम्न उर्वरत होने पर अधिक दिखायी देते हैं। उपरिभूमिक लक्षणों से प्रायः फसल में क्षति का पता उस समय तक नहीं लगता है जब तक कि लगभग 25 प्रतिशत तक पौधे रोगग्रसित नहीं हो जाते हैं। रोग का प्रभाव फसल की उपज के गुण एव मात्रा दोनों पर ही पड़ता है।

रोग हेतु विज्ञान :

रोगजनक अथवा रोगकारक जीव :

मेल्वॉडोगाइन की जातियाँ (1892) मेल्वॉयडोगाइन सूत्रकृमि जगतः ऐनिमेलिया, फाइलमः नेमाटोडा के वर्ग : सेसरनेंटिया गण : टिलेंकिडा एवं कुल : मेल्वॉयडोगाइनिडी का प्रमुख सदस्य है। भारत में मूल–गाँठ रोग उत्पन्न करने वाली मेल्वॉयडोगाइन वंश की सामान्य जातियाँ : मेल्वॉयडोगाइन इनकॉग्नीट, मेल्वॉयडोगाइन जावानिका एवं मेल्वॉयडागाइन एरिनेरिया है जो देश के विभिन्न क्षेत्रों में टमाटर एवं अनेक सब्जियों पर व्यापक रूप से आक्रमण करती है।

आकारिकी तथा जीवन–चक्रः

मेल्वॉयडोगाइन के प्रौढ़ नर एवं मादा को आकृतिक रूप में सरलता से पहचाना जा सकता है। नर सूत्रकृमि लम्बे कृमिरूप (अमतउपवितउ) एवं बहुत छोटी सी गोल पूंछ वोले होते हैं तथा यह आमाप में लगभग 1.2 से 15 मिमी लम्बे एवं 30 से 36 माइक्रोमीटर व्यास के होते हैं। मादा सूत्रकृमि नाशपाती के आकार की तथा आमाप में 0.40 से 1.30 मिमी लम्बी तथा 0.25 से 0.75 मिमी चौड़ी होती है। प्रत्येक मादा सूत्रकृमि एक बार में लगभग 400–500 अंडे देती है। यह अंडे मलाशय ग्रंथि से स्त्रावित एक श्लेषी आधात्री में रहते हैं और एक समूह में भग द्वारा बाहर आते है। अंडे दीर्घवृत्तजीय अथवा लम्बे अंडाकार तथा माप में 67 से 128 माइक्रोमीटर लम्बे एवम् 30 से 52 चउ, माइक्रोमीटर चौड़े होते हैं। प्रत्येक अंडे के भीतर प्रथम अवस्था डिम्भक विकसित होता है और यह अंडे के भीतर ही प्रथम निर्मोचन की अवस्था पार करके द्वितीय अवस्था डिम्भक बन जाता है। द्वितीय अवस्था डिम्भक कृमि–सदृश लम्बी शंकु पूँछ वाला माप में 375 से 500 माइक्रोमीटर लम्बा एवम् 12 से 15 माइक्रोमीटर चौड़ा होता है। केवल यह द्वितीय अवस्था डिम्भक ही पौधे में सक्रमण की क्षमता रखते हैं। यह डिम्भक अंडकवच को तोड़कर बाहर निकल आते हैं और मृदा कणों के बीच में गति करते हैं। यदि डिम्भक के समीप एक रोगग्राही परपोषी उपस्थित होता है तो तब यह उसकी जड़ों के भीतर प्रवेश करके स्थानबद्ध हो जाता है। और मोटाई में वृद्धि करके सॉसेज आकार का हो जाता है। यह डिम्भक अपने शीर्ष के चारों और को कोशिकाओं में अपनी शूकिका प्रवेश कराकर आहार ग्रहण करता है तथा साथ ही इन कोशिकाओं को अपनी लार से भर देता है। इसकी लार कोशिका वृद्धि को उद्दीपित करती है और काशिकांतर्वस्तुओं को भी चित कर देती है, जिसको सुकृमि अपनी शुरुका द्वारा स है। यहाँ पर यह डिम्भक द्वितीय निर्मोचन अवस्था पार करता है और तृतीय अवस्था डिम्भक बन जाता है, जो द्वितीय डिग्भक के समान ही होता है, परन्तु इसमें सूकिका का अभाव होता है और अपेक्षाकृत पुष्ट होता है। तृतीय अवस्था डिम्भक तृतीय निर्मोचन अवस्था पार करके चतुर्थ अवस्था डिम्भक बन जाता है, जिसको नर या वत रूप में पहचाना जा सकता है। नर चतुर्थ अवस्था डिम्भक कृ मि–सदृश होकर तृतीय उपचर्म या क्यूटिकल के भीतर कुकुंडलित रहता है। यह चतुर्थ एवं अंतिम निर्मोचन अवस्था पार करता है और कृमि सदृशं वयस्क न सुत्रकृमि के रूप में जड़ से बाहर निकल आता है, और मृदा में स्वतंत्रता से रहता है। चतुर्थ अवस्था मादा डिम्भक भ मोटाई में एवम् थोड़ा लम्बाई में वृद्धि करता है और चतुर्थ एवम् अंतिम निर्मोचन अवस्था पार करके एक वयस्व मादा सूत्रकृमि बन जाता है जो नाशपातीनुमा दिखायी देती है। वयस्क मादा फूलना जारी रखती है और एक न सुत्रकृमि द्वारा निषेचन से अथवा निषेचन के बिना ही अनिषेकजनन द्वारा अंडे उत्पन्न करती जो एक श्लेषी रक्षात्मक आवरण में घिरे रहते हैं। अंडों को मूल ऊतकों के भीतर अथवा बाहर दिया जा सकता है वास्तव में यह मादा सूत्रकृमि की स्थिति पर निर्भर करता है। अंडे शीघ्र ही स्फुटन करते हैं अथवा य जीवन कर सकते हैं और बसंत ऋतु में स्फुटित हो सकते

हैं। यह र 26–27'' सेल्सियस तापमान 21–25 दिनों में अपना जीवन–चक्र पूर्ण कर लेता है, परन्तु इससे निम्न या उच्च तापमान पर अधिक समय भी लग सकता है। जब अंडे स्फुटन करते हैं, तो इनसे संक्रामक द्वितीय अवस्था डिम्भव निकलकर गाँठो के भीतर से होकर जड़ के निकटवर्ती भागों में पहुँच जाते हैं और उसी जड़ में नये सक्रमण कर देते है अथवा यह डिम्भक जड़ से बाहर निकलकर उसी पौधे की दूसरी जड़ों पर या अन्य दूसरे समीप के पौधों की जड़ में संक्रमण कर देते हैं।

रोग का विकासः प्रायः संक्रामक अवस्था डिम्भक जड़ों के भीतर मूलाग्र के पीछे से प्रवेश करते हैं और कोशिकाओं के बीच में से उपना रास्ता बनाते हुये उस समय तक बढ़ते हैं, जब तक कि वर्धन शिखा के पीछे नहीं पहुँच जाते हैं। यहाँ यह स्थायी रूप से स्थापित हो जाते हैं और इनका शीर्ष रंभजन में रहता है। पुरानी जड़ों में इनका शीर्ष प्रायः परिरंभ में रहता है। इस डिम्भक द्वारा बनाये रास्ते के साथ–साथ की कुछ कोशिकायें क्षतिग्रस्त हो जाती हैं और यदि जड़ में कई डिम्भक प्रवेश कर जाते है तो तब मूलाग्र के निकट की कोशिकाओं का विभक्त होना बन्द हो जाता है तथा जड़ की वृद्धि भी रुक जाती है। दूसरी ओर डिम्भक के प्रवेश द्वार थ्पह. 13.5. के निकट की वल्कुट कोशिकायें बढ़ना प्रारम्भ करती हैं और जंहमे वत्विवज ादवज कभी–कभी डिम्भक के रास्ते के निकट की परिरंभ एवं अंतस्त्वचा कोशिकायें भी बढ़ने लगती हैं। डिम्भक के स्थापित होने के दो या तीन दिनों बाद इसके शीर्ष के चारो ओर व कुछ कोशिकाएँ वृद्धि करना आरम्भ करती हैं। इन कोशिकाओं के केन्द्रक विभक्त होते हैं, परन्तु इनमें कोशिव भित्तियाँ नहीं बनती हैं। कुछ कोशिकाओं को पहले से उपस्थित भित्तियाँ भी टूटकर लुप्त हो जाती हैं और क कोशिकाओं के जीवद्रव्य अंश मिलकर बृहत या महाकोशिकायें बनाते हैं। कोशिकाओं का वृद्धि करना एवम् मिलना 2–3 सप्ताह तक चलता रहता है और महाकोशिकाएँ चारों ओर ऊतकों को अनियमित रूप आक्रांत कर देती है, जिसके कारण पिटिकाएँ या गाँठे बन जाती हैं। प्रत्येक पिटिका या गांठ में 3 से 6 त महाकोशिकाएँ होती हैं, जो वल्कुट के साथ–साथ रंभ में भी बन सकती है कोशिकाकओं की वृ महाकोशिकाओं में आहार के समय सूत्रकृमि द्वारा स्वावित लार में उपस्थित पदार्थों से होती जान पड़ती हैं। सूत्रकृमि आहार ग्रहण करना बन्द कर देता है अथवा मर जाता है तब महाकोशिकाएँ अपहासित हो जाती हैं। यदि महाकोशिकोएं रंभ में बनती है तो अनियमित जाइलम तत्वों का विक हो जाता है अथवा उनका विकास रूक सकता है तथा पहले से उपस्थित जाइलम तत्वों को वृद्धि करती ह कोशिकाओं से उत्पन्न यांत्रिक दाब द्वारा दबाया भी जा सकता है। पिटिका या गाँठ के विकास की प्रारिं अवस्थाओं में वल्कुट कोशिकायें आकार में बढ़ती है, परन्तु बाद की अवस्थाओं के समय यह भी शीघ्रता से वि होने लगती हैं। जड़ों का फूलना महाकोशिकाओं के चारों ओर की संवहन मृदूतक परिरंभ एवम् अंतस्त्वचा कोशिकाओं की अतिवृद्धि एवम् अतिवर्धन सूत्रकृमि की वृद्धि के फलस्वरूप भी हो सकता है। जैसे–जैसे मादा सूत्रकृमि फूलती है और अंडकोष का निर्माण होता है तो इन्हें बाहर की ओर धकेल दिया जाता है, जिससे कि वल्कुट फट जाता है और जड़ में माद स्थिति के अनुसार अंडे अंशतः या पूर्णतः जड़ के बाहर सतह पर या भीतर रह सकते हैं।

रोग–चक्र तथा पर्यावरणीय संबंध या पूर्वानकुलताः मूल–गाँठ सूत्रकृमि मेल्यॉयडोगाइन एक मुदोड़ रोगजनक है और इसका प्रकीर्णन भी मुख्यतः मुदा द्वारा होता है। इस सूत्रकृमि के अंडे पहली रोगग्रस्त फसल को मृदा में छूटी जड़ों के मलबे में उत्तरजीवित रहते हैं। अनुकूल अवस्थाओं में इन अंडों के भीतर डिम्भक प्रथम निर्मोचन की अवस्था पार करता है। तथा इससे जो द्वितीय अवस्था के डिम्भक बनते हैं वही संक्रमण की क्षमता रखते हैं यह द्वितीय अवस्था डिम्भक अडकवच को तोड़कर बाहर निकल आते हैं और उपयुक्त परपोषी जड़ की खोज में मृदा कणों के बीच रेंगते रहते हैं, परन्तु इनकी यह गति बहुत कम (लगभग 30 सेमी प्रति मार) होती है। इसके लिये इनको अपनी ही संचित ऊर्जा पर निर्भर रहना पड़ता है । यह ऊर्जा इन्हें लिपिड नामक पदार्थ से मिलती है। यदि अनिश्चित काल तक इनका सम्पर्क उचित परपोषी की जड़ों से नहीं होता है तो तब यह ऊर्जा के क्षीण होने से अपनी आक्रमण क्षमता खो बैठते हैं तथा अंत में इनकी मृत्यु हो जाती है। खेत में परपोषी पौधे के उपस्थित होने पर यह जड़ों के निकट पहुँच जाते हैं तथा मूल आवों द्वारा जड़ों की ओर आकर्षित होते हैं और समूह में जड़ के चारो ओर एक हो जाते हैं। जहाँ की सतह पर पहुंचकर यह द्वितीय अवस्था के डिम्भक वाह्यत्वचा को वेधकर ऊतकों में प्रवेश कर जाते हैं। अब तक यह डिम्भक निराहार जीवन ही व्यतीत करते हैं तथा परपोषी के ऊतकों में पहुँचकर ही अपना भोजन प्राप्त करते हैं । इनका लक्ष्य फ्लोएम

ऊतक होते हैं। परपोषी के भीतर डिम्भक में 3 निर्मोचन और होते है। जड़ों के वेधन के लगभग दो सप्ताह बाद तक भी इनमें लिंगों का विभेदन नहीं हो पाता है। परपोषी के भीतर इन डिम्भकों की वृद्धि होती रहती है तथा लैंगिक विभेदन भी होता रहता है। नर और मादा की संख्या का अनुपात उपलब्ध भोजन को मात्रा पर निर्भर होता है। यद्यपि प्रारम्भ से ही नर एवं मादा डिम्भक अलग–अलग होते हैं, परन्तु कम भोजन उपलब्ध होने की अवस्था में मादा भी नर का रूप ग्रहण कर लेती है। पोषण की पर्याप्त मात्रा मिलने पर नर भी, मादा का रूप ले लेता है। जनन के लिये मैथुन आवश्यक नही होता है। मादा सूत्रकृमि का आकार धीरे–धीरे गोल होने लगता है तथा परिपक्व मादा में केवल अंडे ही दिखायी देते हैं। अंडे परपोषी ऊतकों द्वारा पिरे रह सकते है और ऊतकों के भीतर ही इनसे द्वितीय अवस्था के डिम्भक बाहर निकलकर उन्हीं जड़ों पर और अधिक संख्या में संक्रमण करके गाँठें बना देते हैं अथवा अंडे ऊतकों से बाहर निकल कर डिम्भक उत्पन्न कर लेते हैं जो नए ऊतकों का संक्रमण करते हैं। डिम्भक की शोषण क्रिया से पौधे के ऊतक शीघ्रता से विभाजित होते हैं तथा उनकी कोशिकाओं का आकार बढ़ जाता है और इस प्रकार गाँठों का जन्म होता है। यह डिम्भक स्व पौधों की जड़ो में संक्रमण करके इस चक्र को पुनः दोहरा सकते हैं। मौसम के अन्त में परपोषी की अनुपस्थिति में खुदा में छूटी रोगी पौधों की मूल–गांठों के भीतर ही अंडे उत्तरजीवी बने रहते हैं। इन्हीं रोगी जड़ों की गाँठों में भूमि के अन्दर सूत्रकृमि एक फसल काल से दूसरे फसल काल तक जीवित रहकर प्राथमिक निवेश द्रव्य का कार्य करते हैं।

मूल–गाँठ सूत्रकृमि का प्रसार कई प्रकार से होता है जैसे : सूत्रकृमि वाली बियाड़ में प्रयोग किये जाने वाले बीज द्वारा, कृषि यत्रों, ट्रैक्टर व अन्य वाहनों के पहियों, कार्यकर्त्ताओं के पैरों एवं पशुओं के खुरों अथवा अन्य दूसरे साधनों द्वारा जिन पर कि मृदा में सूत्रकृमि भी चिपककर चल जाते हैं। यदि सुत्रकृमिग्रस्त खेत से होकर सिंचाई का जल दूसरे खेतों में पहुंचता है अथवा खेतों से मुख्य नहर में वापस आता है तो भी सूत्रकृमि रहित खेत में उनके पहुँचने की सम्भावना बढ़ जाती है। मूल–गाँठ रोग की तीव्रता मुदा में उपस्थित आक्रामक डिम्भकों की संख्या, आर्द्रता, तापमान इत्यादि अनेक कारकों पर निर्भर होती है। परपोषी फसलों की निरंतर खेती करते रहने से मृदा में सूत्रकृमियों की संख्या बढ़ती रहती है। डिम्भको की गतिशीलता पर मृदा के भौतिक, रासायनिक एवम जैविक वातावरण का बहुत अधिक प्रभाव पड़ता यदि मृदा अधिक गीली या अतिशुष्क है तो डिम्भक कम गतिशील होते हैं, जिससे कि संक्रमण भी कम होता है। अधिक मुद्रा आर्दता, वायुसंचरण की कमी एवम चिकनी मिट्टी (बसंल) के मृदा मे होने से डिम्भकों की गति कम हो जाती है। बलुई–हल्की मृदा इनकी गति के लिये सर्वोतम होती है। भारी मृदाएँ अधिक समय तक गीली रहती हैं, अतः ऐसी भूमि में रोग कम उत्पन्न होता है। हल्की बलुई दोमट मृदा रोग की वृद्धि के लिये अधिक अनुकूल होती है। डिम्भक 40° से 50° सेल्सियस के अधिकतम तापमान पर मर जाते हैं। रोग के विकास के लिये अनुकूलतम तापमान 25° से 28° सेल्सियस पाया गया है।

रोग प्रबंध

मूल–गाँठ रोग की रोकथाम के लिये निम्नलिखित उपाय किये जाते हैं:

1. जिस खेत में इस रोग का प्रकोप हुआ हो, उसकी फसल के समाप्त हो जाने के पश्चात् गर्मियों में मई–जून और जुलाई–अगस्त के माह में 15 दिन के अन्तर पर मिट्टी पलटने वाले हल से 4–5 बार गहरी जुताई करनी चाहिये। जुताई से निकलने वाली जड़ों इत्यादि को एकत्र करके जला देना चाहिये। यदि ऐसा करना सम्भव न हो तो इन्हें एकदम ऊपरी सतह पर सूखने के लिये छोड़ देना चाहिये, जिससे कि सूत्रकृमि के अंडे एवम् डिम्भक कड़ी धुप एवम् निर्जलीकरण के कारण मर जायें। ऐसा करने से मूल–गाँठ सूत्रकृमियों में 63–99 प्रतिशत तक कमी हो जाती है।
2. रोग प्रतिरोधी फसलों के साथ 2–3 वर्ष का फसल चक्र अपनाना चाहिए। ज्वार, मक्का, बाजरा, मखमली सेम, रिजका, जई, सांवा, काकुन इत्यादि फसलें मूल–गाँठ सूत्रकृमि की प्रतिरोधी पायी गयी है। यदि इन फसलों को फसल चक्र में रखना अर्थिक दृष्टि से हानिकर न हो तो इस विधि को अपनाया जा सकता है।
3. बीज का चयन ऐसे खेत से करना चाहिये, जिसमें इस रोग का प्रभाव न हुआ हो ।
4. सूत्रकृमि से ग्रस्त खेतों को लगभग 12 इंच गहराई तक 15 सप्ताह के लिये पूरी तरह से जल से भरे रहने के उपरान्त ली जाने वाली फसल में रोग काफी कम हो जाता है। अतः

धान की फसल के बाद खेत में सब्जियाँ उगाना अधिक लाभदायक है।

5. सूत्रकृमिग्रस्त रोपण पदार्थ, जैसे कंद, शल्ककंद, प्रकंद, घनकंद या मूल कलमों (तववज बनजजपदहे) इत्यादि का रोपण से पहले तप्त या ऊष्ण जल उपचार करना भी सूत्रकृमियों को नष्ट करने में लाभदायक सिद्ध हुआ है। आलू के कंदों का 46°–47.5°C तापमान पर 2 घंटे के लिए, अदरक के प्रकंदों को 55°C तापमान पर 10 मिनट के लिये शकरकंद को 46.7°C तापमान पर 65 मिनट के लिये ऊष्ण जल उपचार किया जाता है।
6. कार्बनिक मृदा सुधार को के प्रयोग द्वारा भी इस रोग को नियंत्रित किया जा सकता है। अनेक अखाद्य खलियोंय जैसे करंज, नीम, रतनज्योत (जॅटोफ) महुआ एवं एरंड इत्यादि को 15–25 क्विंटल प्रति हेक्टेयर खेत में डालने से रोग की व्यापकता कम हो जाती है। इसके अतिरिक्त खेत में लकड़ी का बुरादा 25 क्विंटल प्रति हैक्टेयर के साथ 120 : 80: 120 के अनुपात में नाइट्रोजन, फॉस्फोरस एवं पोटाश डालने पर इस रोग को भली प्रकार से नियंत्रित किया जा सकता है। कृषि विश्वविद्यालय पन्तनगर में टमाटर एवम् भिंडी की फसलों में मार्गोसा, एरंड एवं मूंगफली की खलियों को 0.2 प्रतिशत (w/w) के हिसाब से बोने के तीन सप्ताह पहले खेत में प्रयोग करके मूल–गाँठ सूत्रकृमि के प्रकोप को बहुत कम करने में सफलता प्राप्त हुई है।
7. मूल–गाँठ रोग के नियंत्रण की सबसे अधिक सफल विधि सूत्रकृमिनाशी रसायनों द्वारा मृदा उपचार करना है। नर्सरी की क्यारी में कार्बोफ्यूरान, बेनफुरोकार्ब, एथोप्रोप, सेफॉस या फिनामिफॉस इत्यादि में से किसी एक को 0.6 ग्राम सक्रिय अवयव प्रति वर्ग मीटर के हिसाब से प्रयोग करके रोग नियंत्रित किया जा सकता है। भिंडी, लौकी या घिया कददू एवम् करेला की फसलों का उपचार कार्बोसल्फान या बेनरोकार्ब द्वारा 3 प्रतिशत (w/w) के हिसाब से करना बहुत उपयोगी पाया गया है। गत दिनों टमाटर एवम् बैंगन में सेबुफॉस की 1 किलोग्राम मात्रा प्रति हैक्टयर के हिसाब से छितरा कर प्रयोग करने से मूल–गाँठ सूत्रकृमि को प्रभावशाली ढंग से नियंत्रित किया गया है। आलू में ऐल्डिकार्ब 10 जी (50 प्रतिशत मात्रा बुवाई के समय 50 प्रतिशत मात्रा मिट्टी चढ़ाते समय) प्रयोग करके मूल–गाँठ रोग को नियंत्रित किया गया है। इसी प्रकार टमाटर के लिए तैयार की गयी नर्सरी की क्यारियों का मृदा उपचार कार्बोफ्यूरान एवम् रगबाइ द्वारा 2 किलोग्राम सक्रिय अवयव प्रति हैक्टेयर के हिसाब से करके मूल–गांठ सूत्रकृमि को नियंत्रित करने में सफलता मिली है।
8. टमाटर के बीजों को बुवाई से पहले फिनामिफॉस 1 प्रतिशत सक्रिय तत्व (w/w) के हिसाब से उपचारित करके बोने से मूल–गाँठ रोग को नियंत्रित किया जा सकता है। यदि टमाटर की पौद की जड़ों को रोपाई से 6 घंटे पहले कार्बोसल्फान, मोनोक्रोटोफॉस, फोसलॉन एवम ट्राइएजाफॉस के 0.1 प्रतिशत घोल में डुबोकर रोपण किया जाये तो उपज में वृद्धि हो जाती है और मूल –गाँठ रोग का बहुत कम प्रभाव होता है।
9. सब्जियों में मूल–गाँठ रोग के नियन्त्रण का सबसे सस्ता, सरल एवम् व्यावहारिक उपाय सूत्रकृमि प्रतिरोधी किस्मों का प्रयोग है। अतः सदैव मूल–गाँठ सूत्रकृमि प्रतिरोधी किस्में: जैसे टमाटर की एस.एल.–120, : निमैटैक्स, वाई–220, ऐटकिंसन, मैनालूसी 66 एन, 569 एन–10, एनटाडीआर, पीएयू–1 (7–3–1–4), पीएयू 2 (1–6–1–4), पीएयू 3 (2–6–3–1–7), पीएयू 4 (8–2–1–2–5), पीएयू 5(2–1–2–4), पीबीएनआर–7, बीटी.1, हिसार ललित, मंगला हाइविड इत्यादि बैगन की घटिकिया व्हाइट, मारू मार्वल, विजय, ब्लैक ब्यूटी, टी 3 एसएसवाइटी 2, बनारस जियांट, एस 92–2, एस 96–25 एस.–419, पॉल बैंगन इत्यादि आलू की एचसी–294, ए2708, ग्रेट स्काट, वीटीएन 2 इत्यादि कुकरविटस् (खीरा वर्ग) की बीकानेर जयपुरी इत्यादि मिर्च की जी4, मिर्च–1 रेडलांग केट एन.पी. 64 ए सीए (पी) 63 इत्यादि फरासबीन (फ्रेंच बीन) की बनत, ब्ल्यू लैक, ब्राउन ब्यूटी, स्ट्रिंग्लेस कैम्ब्रिज कीनिया 3 इत्यादि सपक्ष बीन की एल.बी.एन.सी. इत्यादि मटर को सी 50, ए–70, एवं बी.–58 इत्यादि को ही उगाना चाहिए।
10. समन्वित या एकीकृत मूल–गाँठ सूत्रकृमि प्रबन्ध : गर्मियों में खेतो की जुताई करके कम से कम 15 दिन तक खुला छोड़ना या मृदा सौरीयन के बाद नर्सरी की क्यारियों का किसी उपयुक्त सूत्रकृमि रसायन द्वारा मृदा उपचार करके सूत्रकृमिप्रतिरोधी किस्मों को उगाने से 3.1 से 130.8 प्रतिशत तक उपज में वृद्धि होती है तथा 13.5 से 78.9 प्रतिशत तक पौधों की जड़ों में गांठें कम बन पाती हैं । यदि खेत में 400 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर नीम की खली अथवा 225 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर रतनज्योत की खली को मिला दिया जाये तो उपरोक्त उपायों की प्रभाव क्षमता में और अधिक वृद्धि हो जाती है।